ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 142-145
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

विभिन्नाचार्यों के मतानुसार रस के स्वरूप का विश्लेषणात्मक – अध्ययन

डॉ0 जनार्दन झा
सहायकाचार्य– संस्कृत, राजकीय महिला महाविद्यालय, सलेमपुर–देवरिया, (उ0प्र0) भारत

Received-28.10.2022, Revised-04.11.2022, Accepted-10.11.2022 E-mail: drjanardanjha@gmail.com

सारांशः ***भारत की आलोचना सोपान में 'रस' के महत्व को कौन नहीं जानता है? काव्य के प्राण के रूप में अथवा काव्य के आत्मा के रूप में 'रस' को विभिन्न आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। रसाचार्यों के मतानुसार रस के बिना किसी काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। 'रस' की व्युत्पत्ति कई धातुओं से हुयी है।***

'भ्वादिगणीय रसशब्दे' धातु से अच् प्रत्यय करने पर 'रस' शब्द सिद्ध होता है,यथा– 'रसतीति शब्दं करोतीति रसः' अर्थात् जो शब्द करता है,वह'रस' है। यह व्युत्पत्ति आलोच्य'रस' पक्ष में ग्रहणीय नहीं है।[1]

कुंजीभूत शब्द– आलोचना सोपान, प्राण, आत्मा, कल्पना, व्युत्पत्ति, आस्वादन, वैदिक साहित्य, अभीष्टवर्षक, आनन्दमग्न।

पाणिनि व्याकरण के चुरादिगणीय 'रसास्वादनस्नेहयोः' धातु से 'अच' प्रत्यय करने पर 'रस' शब्द सिद्ध होता है। 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः', मतलब जो आस्वाद का विषय होता है, उसे 'रस' कहते हैं। इस व्युत्पत्ति के आधार पर हृदय का पिघलना, द्रुतीकरण, स्नेहन और आनन्द का– आस्वादन ही 'रस' शब्द का वाच्य है। 'रस्यन्ते आस्वाद्यन्ते इति रसाः' मतलब जिनका आस्वादन किया जाए, वे 'रस' हैं।[2] या जो आस्वादन का विषय बनते हैं, वे 'रस' हैं।

विभिन्न कोशकारों ने 'रस व्युत्पत्ति' की दोनों विधियों से भिन्न–भिन्न अर्थ निकाला है जो निम्नलिखित हैं – आप्टेकृत संस्कृत–हिंदी–कोश में १.सार, दूध, रस, कुसुमरस, २.तरल, द्रव, ३.पानी, ४.मदिरा, शराब, ५.घूंट, एकमात्रा, खुराक, ६.चखना, रस, स्वाद, ७.कोई स्वादिष्ट पदार्थ, ८. प्रेम, स्नेह, आनन्द, प्रसन्नता, खुशी, ९.काव्य रस, १०.पारा, इत्यादि।[3]

भारतीय भाषा में रस शब्द का प्रयोग 4 अर्थों में सामान्य रूप से प्राप्त होता है–

१. साहित्य शास्त्र में 'रस' का प्रयोग काव्यानन्द, काव्य सौंदर्य, काव्यास्वाद, काव्यविमर्श के रूप में देखने को मिलता है।
२. आयुर्वेद में 'रस' शब्द के दो अर्थ पारद, और देहधातु है।
३. सारभूत द्रव और उसके आस्वाद के अर्थ में– पदार्थ का सारभूत द्रव रस है और आस्वाद भी 'रस' है और आस्वाद भी 'रस' है।
४. अध्यात्म के विमर्श 'आत्मानंद','मोक्षरस','भक्तिरस' के रूप में 'रस' शब्द का प्रयोग प्रचलित है।

रस शब्द परम्परा– 'रस' शब्द पुरातन भारतीय वाङ्मयी परंपरा में प्रसूत रूप से मिलता है। ऋग्वेद में पदार्थों के सारभूत द्रव, वनस्पतियों के रस इत्यादि अर्थों में रस शब्द का प्रयोग हुआ है–

"यो यो रसं दिप्सति पित्वो आग्नेय तो अश्वानां तो गवां यस्तनूनाम्"।[4]

मतलब, हे अग्नि! जो हमारे अन्न का सार विनष्ट करने की इच्छा करता है, वह गायों, अश्वों और संतानों का सार नष्ट करने की इच्छा करता है। यहां 'रस' का प्रयोग सारतत्त्व के अर्थ में हुआ है। वैदिक साहित्य में सोमरस के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है–

"मां गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये। सूतं भराय संसृज"।[5]

मतलब, देवों को मत्त करने के लिए उस अभीष्टवर्षक सोमरस में गव्य मिलाओ। अथर्ववेद का अधोविन्यस्त मन्त्र धविचारणीय है–

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूरसेन तृप्तो।[6]

मतलब, अकाम, धीर, अमृत, स्वयम्भू, ब्रह्म अपने रस से तृप्त रहता है। उस धीर, अजर, अमर, सदा तरुण आत्मा को जानने वाला मृत्यु से नहीं डरता।

उपनिषदों में भी 'रस' को परिभाषित कर उसे ब्रह्म का वाचक कहा गया है–

'रसो वै सः' ।रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति।[7]

मतलब, वह 'रस' रूप है, इसीलिए रस को प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है। रामायण के बालकांड में नवरसों का स्पष्ट विवरण मिलता है–

"रसैः श्रृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतद्गायताम्"।।[8]

इन सभी के अतिरिक्त कठोपनिषद्, महर्षि वात्स्यायन के 'कामसूत्र' इत्यादि प्राचीन ग्रंथों में 'रस' का

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

प्रयोग मिलता है।

भारतीय काव्य शास्त्र और रस– भारतीय काव्य शास्त्र में 'रस' मीमांसा का प्रारंभ आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से माना जाता है। भरत मुनि का समय ईसा पू०२०० ई० सन् १०० के आस–पास माना गया है। भरत मुनि के पहले भी कुछ रसवेत्ताओं जैसे– व्यास, शाण्डिल्य अगस्त्य, वासुकि, दातिल, नन्दिकेश्वर इत्यादि रसवेत्ता आचार्यों का उल्लेख स्वयं भरत ने स्वग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में किया हैय परन्तु इन सभी का प्रमाण अप्राप्त है, जिससे भरत मुनि को ही 'रस' का प्रतिपादक माना जाता है। भरत मुनि ने 'रस' को सूत्रात्मक शैली में प्रतिपादित किया है जो इस प्रकार है:–

तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस– निष्पत्तिः।[६]

मतलब, विभाव,अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से 'रस' की निष्पत्तिः होती है। भरत मुनि ने अपने मत को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि–

गुडादिभिर्द्रव्यैः व्यञ्जनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रहा निवर्तन्ते
तथा भावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति।[७]

मतलब, जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से भोज्य रस की निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों के योग से षाडवादि रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव रस को प्राप्त होते हैं। भरत मुनि की इस परिभाषा से निम्नांकित तथ्य स्पष्ट होते हैं–
'रस' आस्वाद्य नहीं है अर्थात् अनुभूति नहीं अनुभूति का विषय है।

विविध भावों– विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारीभाव से संयुक्त कथा विविध अभिनयों द्वारा अभिव्यंजित स्थायी भाव ही रस में परिणत होता है।

रसानुभूति सुखमय होती है और रसास्वाद आनंदमय होता है।

जिस प्रकार अनेक वस्तुओं के मेल से पाकरस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अनेक भावों के मिलने से रस का आविर्भाव होता है।

भरत मुनि द्वारा प्रस्तुत रससूत्र और परिभाषा का विश्लेषण विविधाचार्यों के द्वारा किया गया है। यह परंपरा संस्कृत के विद्वानों से प्रारंभ होकर वर्तमान विद्वानों तक चली आती है। प्रमुख विद्वानों के मतों को समयक्रमानुसार इस तरह प्रस्तुत किया किया जा रहा है–

मम्मटाचार्य ने 'रस' का वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत किया है–
कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके यानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।[८]
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।

अर्थात् लौकिक व्यवहार में जो रत्यादि भाव और उनके कारण, कार्य और सहकारी कारण काव्य और नाटक में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं और उन विभावादि द्वारा व्यक्त स्थाई भाव को रस कहा जाता है।
कविराज विश्वनाथ ने भावों की परिपक्वावस्था को रस माना है। जैसे–

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्।।[९]

अर्थात् विभाव,अनुभाव और संचारियों की सहायता से वासना रूप में स्थित भावपूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाय, तो उसे ही रस कहते हैं।

कविराज विश्वनाथ ने आगे चलकर अपने पूर्ववर्ती प्रायः सभी आचार्यों के मतों के परिप्रेक्ष्य में रस का स्वरूप भी स्पष्ट करते हुए लिखा है– **सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।**

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।[१०]

अर्थात् चित्त में सत्व गुण के उद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारवान्, सहृदयजन अखण्ड स्वप्रकाशानन्द,चिन्मय अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से मुक्त,ब्रह्मास्वादसहोदर,लोकोत्तर चमत्कार प्राणरस का निज स्वरूप से अभिन्नतः आस्वादन करते हैं। कविराज विश्वनाथ की इस परिभाषा में रस के निम्नांकित गुण निहित हैं– रस आस्वाद्य का विषय है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

उसका आविर्भाव सत्त्वगुण के उद्रेक की स्थिति में होता है।

रस अखण्ड और स्वप्रकाशानन्द है।

वह अन्य ज्ञान से रहित है।

लोकोत्तर चमत्कार स्वरूप है।

ब्रह्मास्वादसहोदर है।

चिन्मय है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने शांकर वेदान्त की दार्शनिक चिंतनों का विनियोग कर रस का सम्बन्ध वेदान्त दर्शन के साथ स्थापित किया है। इनकी रस विषयक दार्शनिक व्याख्या वैदिक मंत्र पर आश्रित है। पंडितराज जगन्नाथ ने भी रस को आनंदस्वरुप मानकर उसे परिभाषित किया है–

निजस्वरूपानन्देन सह गोचरीक्रियमाणः प्राग्विनिविष्टवासनारूपो रत्यादिरेव रसः।[७]

अर्थात्, पहले से वासना के रूप में रत्यादि स्थायी भावों की आनन्दस्वरूप गोचरता रस है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सामाजिकों में वासना रूप में विद्यमान रति आदि स्थाई भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारियों की सहायता से रस रूप बन जाता है।

पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तिम रस सिद्धांत के आचार्य थे। इनका समय १७ वीं शताब्दी के मध्य माना गया है। यह समय हिन्दी साहित्य में उत्तर मध्य काल के नाम से जाना जाता है। इस काल की अवधि दो वर्षों की थी। इस काल में भी आचार्य कवियों द्वारा रसनिरूपण तथा अलंकार आदि काव्यशास्त्रीय विषयों पर पर्याप्त लिखा गया है। परंतु जितने भी रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत आचार्यों के मतों को यथावत रख दिया है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि संपूर्ण रीतिकाल में 'रस' निरूपण अवश्य हुआ है, परंतु वह संस्कृत आचार्यों के मतों पिष्टपेषण मात्र है। जैसे– आचार्य केशव दास का रस संबंधी मत है–

मिलि विभाव, अनुभाव पुनि, संचारी सुअनूप।
व्यंग करै थिर भाव जो सोई रस सुखरूप।।[८]

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के द्वारा व्यंजित भाव को रस कहते हैं। केशव के उपर्युक्त मत पर मम्मट और विश्वनाथ के रस विवेचन का प्रभाव स्पष्ट है।

इसी प्रकार देव ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है–

जो विभाव अनुभाव अरु विभचारिनु करि होइ।
थिति की पूरन वासना,सुकवि कहते रस सोई।।[९]

मतलब कि विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा स्थायी भाव की पूर्ण वासना को रस कहते हैं। यहां 'वासना' से मतलब स्मरित ज्ञान अथवा अनुभव से है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य केशव तथा देव के समान समस्त रीतिकालीन कवियों ने रसनिरूपण अवश्य किया है, परन्तु उनमें मौलिक चिंतन का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत साहित्य के रसवादी आलोचकों ने जो 'रस' को पृथक–पृथक् शब्दावली से प्रस्तुत किया है, उसमें कतिपय तथ्य इस प्रकार हैं, जो सभी का सारतत्व है, वह निम्नांकित है–

रस का आस्वादन किया जाता है।

स्थायीभाव ही भावों द्वारा परिपक्व होकर रह की अवस्था को प्राप्त करते हैं।

रस की निष्पत्ति आनन्दावस्था में होती है।

जब अपने–पराए का भेद समाप्त हो जाता है,तब रस की निष्पत्ति होती है।

रसानन्द को ब्रह्मानंद की तरह माना गया है।

संस्कृताचार्यों जैसे आचार्य मम्मट, कविराज विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ इत्यादि ने, जो रस की परिभाषा दी है, वह मौलिक नहीं है क्यों कि ये सभी मानते हैं कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव मिलकर स्थायीभाव को 'रस' अवस्था तक ले जाते हैं। इसे भरत मुनि ने पहले अपने रससूत्र और रसस्वरूप में स्पष्ट कर दिया है। मात्र शब्दावली का ही अन्तर है, जिसे उस युग की आलोचना का एक गुण माना जाता था। संस्कृत आलोचकों की भी पद्धति थी कि किसी ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकार द्वारा दिये गये मत का खंडन कर, साथ में कुछ उदाहरणों से जोड़कर उसे अपने नाम से जोड़ लिया जाता था।

यह पद्धति संस्कृत से चलकर रीतिकाल तक आई। रीतिकाल में अनेकाचार्य हुए और शास्त्रीय विश्लेषण भी पर्याप्त

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

हुए, परंतु उनमें मौलिकता का अभाव है। रीतिकालीन समस्त आचार्य, आचार्यत्व के व्यामोह में संस्कृताचार्यों की पद्धतियों का पिष्टपेषण कर रहे थे। उसका प्रमुख कारण यह था कि हिन्दी में रीतिकाल का समय सं० १७००–१९०० राजाओं, सामंतों का था। रीतिकालीन प्रायः सभी कवि आचार्य किसी न किसी राजा के दरबारी थे। उस युग की यह परम्परा बन गई थी कि अपने राजा का यशोगान कर वाह–वाही लेकर उसके बदले बहुमूल्य चीजें अर्जित कीजिए। ऐसी विचारधारा में कदाचित् ही कोई कवि ऐसा होगा, जो अपनी मौलिकता पर विचार कर नया विचार प्रस्तुत करे।

संस्कृताचार्यों ने रसानुभूति की परिकल्पना की है, अर्थात् रस या तो उत्पन्न होगा या नहीं होगाय परंतु आचार्य शुक्ल ने रस की तीन कोटियां निर्धारित कर यह बताया कि रस की उत्पत्ति होगी,अगर उसके समस्त रसांग (विभाव, अनुभाव एवं संचारी) हैं।

संस्कृताचार्यों द्वारा विभाव के दो भेद किए हैं– आलंबन एवम् उद्दीपनय परन्तु आचार्य शुक्ल ने आलंबन एवम् आश्रय– इन दो विभाव के भेदों को माना है।

शुक्ल जी ने भावों में भी नूतन उद्भावना की है। जैसे– 'बीजभाव– 'किसी प्रबंध काव्य के प्रधान पात्र में कोई मूल प्रेरक भाव अथवा बीजभाव रहता है, जिसकी प्रेरणा से घटना–चक्र चलता है और अनेक भावों से स्फुरण के लिए स्थान निकलता रहता है। इस बीजभाव को साहित्य शास्त्रों में निरूपित स्थाई भाव और अंगीभाव दोनों से पृथक् समझना चाहिए। उपसंहार– आचार्य भरतमुनि द्वारा प्रस्तुत किए गए'रस' संबंधी मत के संस्कृत से लेकर हिन्दी के आधुनिक काल तक अनेक व्याख्याता हुए। परंतु **भट्टलोल्लट, श्रीशंकु, अभिनवगुप्त,**

भट्टनायक इत्यादि संस्कृताचार्य एवं हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को छोड़ शेष सभी या तो अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से प्रभावित हैं, अथवा उनके विचारों को नाना शब्दावली के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। चाहे वह संस्कृत का समय हो, अथवा वर्तमान आधुनिक हिन्दी का, भारतीय काव्य शास्त्र का प्राणपरक सिद्धांत– रस सिद्धांत है। इसका प्रमुख उदाहरण रसों की बढ़ती–घटती संख्या को माना जा सकता है। शुक्ल जी के परवर्ती अथवा पूर्ववर्ती हिन्दी आलोचक कवियों ने जो रस की परिभाषा अथवा उसके स्वरूप को प्रस्तुत किया है,वह कहीं न कहीं से संस्कृताचार्यों के मत से प्रभावित है। इसमें कोई संशय नहीं है। इति शुभ्

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१ संस्कृतधातुकोष,पृ. ६६,
२ पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, ३/३/११८,
३ संस्कृतहिन्दीकोषः, वामन शिवराम आप्टे, पृ०८४६,
४ ऋग्वेद,७/१०४/१०,
५ ऋग्वेद,६/६/६,
६ अथर्ववेद,१०/५/४४,
७ तैत्तिरीयोपनिषद्,२.७,
८ वाल्मीकिरामायणम् १/४८–६,
९ नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि,६.३२
१० तथैव,
११ काव्यप्रकाश,४.२७–२८,
१२ साहित्यदर्पण,३.१,
१३ तथैव,
१४ रसगंगाधर पृ० २६,
१५ रसिक प्रिया, केशवदासजी,१.२,
१६ भावविलास,देवय

*****